अभिप्राय और अर्थ

प्रफुल्ल कोलख्यान

जीवन भर शब्द को बरतने के बावजूद कहे हुए का दूसरा ही अर्थ निकल जाना संभव हो ही जाता है। रिश्तों की बुनियाद हिल जाती है। मन खट्टा हो जाता है। अगली मुलाकात तक मन में ऐसा प्रसंग बार-बार अपने को दुहराता है। हम आगे से सतर्क होने का संकल्प लेते हैं। शब्दों को बरतते हुए हमारा पूरा ध्यान अर्थ पर होता है, अभिप्राय पर नहीं। अभिप्राय की उपेक्षा कर अर्थ पर ध्यान केंद्रित रहने के कारण ही ऐसा अनर्थ होता है।

समय के साथ शब्दों के अर्थ बहुत तेजी के साथ बदलते हैं। जितनी तेज रफ्तार समय की होती है उतनी ही तेजी से जीवन के अर्थ भी बदलते हैं। जीवन के ही अर्थ बदल जाते हैं, शब्दों का क्या! मेरे एक मित्र हैं विजय शर्मा। उद्योगपति हैं। कितने बड़े हैं ठीक-ठीक नहीं जानता। हमारे मित्रों में ऐसा कोई है नहीं इसलिए हमारे संदर्भ में बड़े उद्योगी हैं। कहानी भी लिखते हैं। अच्छी कहानियाँ लिख सकते हैं। किस्सागोई उनके स्वभाव में है। लिखते कम हैं, क्योंकि लिखने को बाएँ हाथ का काम मानते हैं। बाएँ हाथ का काम उन्हें कम ही रास आता है! हालाँकि, एक कथा संग्रह उनके खाते में है। बीस साल पहले जब हम मिलते थे तो अपने-अपने नजरिये पर काफी जमकर बात करते थे। कहना न होगा कि हमारे नजरिये में समानाता के तत्त्व थे तो असमानता के भी थे। जीवन के बुनियादी दृष्टिकोण में भी भिन्नता के बीज थे। समय के साथ-साथ भिन्नता के बीज वृक्ष बनते गये और समानता के तत्त्वों पर छा गये। अब कभी-कभार किसी कुंभ, किसी शोक, किसी विमोचन आदि के अवसर पर ही मुलाकात होती है। ऐसे अवसरों पर हमारी मुलाकात अब प्रेमचंद के शब्दों में कहें तो तलवार और ढाल की तरह होती है। यह अलग बात है कि अब न तलवार में जोर रह गया है और न ढाल ही बहुत काम का रह गया है। विचार भिन्नता के ऐसे मैदान में हम आ गये हैं जहाँ भिन्नता का रिवाज, असहमति का आदर कोई मायने नहीं रखता। वक्त ने वह तमाशा दिखाया कि हमारी बहस के बुनियादी मुद्दे ही बेमानी हो गये। कम-से-कम उन मुद्दों पर अब कोई-कोई ही गंभीरता से बात करता है। अब मतभेद या विरोध के शब्दार्थ चाहे बीस साल पहले की ही मुद्रा में खड़े हों लेकिन सचाई यह है कि इनके अभिप्रेयार्थ में बदलाव आ गये हैं। अब मतभेद या विरोध का तात्पर्य बदल देना नहीं, बल्कि बदलते हुए में अपने लिए अधिक सुविधाजनक स्थिति की व्यवस्था करना है। जीवन में बह रही बयार ने

अभिधेयार्थ, लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ को शक्तिहीन कर दिया है। अब सिर्फ सुविधार्थ ही काम के काबिल रह गया है।

अभिप्राय के तेजी से बदलने के कारण शब्दों के अर्थ में बदलाव हो रहा है। जनतंत्र से लेकर आतंकवाद तक, धर्मनिरपेक्षता से लेकर सांप्रदायिकता तक, दोस्त से लेकर दुश्मन तक, जीवन से लेकर मरण तक, करुणा से लेकर क्रूरता तक, उदारता से लेकर कट्टरता तक, वैश्विकता से लेकर स्थानिक राष्ट्रीयता तक, शिक्षा से लेकर निरक्षरता तक सभी के अर्थ तेजी से बदल रहे हैं। उस दिन कमलेश सेन के निधन पर आयोजित स्मृति सभा में जाना हुआ था। कमलेश सेन बांग्ला के महत्त्वपूर्ण कवियों में तो शुमार हैं ही, हिंदी से बांग्ला में उन्होंने काफी अनुवाद किया है। स्थापित के ही नहीं, अपने समय के नवोदितों के भी। बांग्ला साहित्य के दिग्गज लोगों में से भी कई हिंदी साहित्य के दिग्गजों का नाम तक नहीं जानते हैं। इतना ही नहीं, कुछ को तो यह जानने की उत्सुकता भी रहती है कि प्रेमचंद इन दिनों क्या लिख रहे हैं! ऐसे में कमलेश सेन को देखकर संतोष होता था। वे 'तृतीय दुनियार साहित्य' नाम से पत्रिका भी निकालते थे। मुक्तिबोध की तरह कमलेश सेन भी लेखकों के 'वीआइपी' बनने या बनने की होड़ में शामिल होने को अशुभ मानते थे। बांग्ला की एक सुप्रसिद्ध लेखिका के वीआइपी बन जाने पर उनका असंतोष न चाहते हुए भी झलक जाता था। उनके आखिरी आयोजन में जाने का अवसर मिला था। एक उत्साही बंग-बाला की बंगलिपि में उर्दू 'शायरी' की पुस्तक का लोकार्पण होना था। लिपि को लेकर उर्दू की संवेदनशीलता को देखते हुए इस दिशा में कवियत्री को प्रोत्साहित करना साहस का काम तो था ही! ऐसे कमलेश सेन अचानक उठ गये।

गीतेश शर्मा के 'जन संसार' में आयेजित कमलेश सेन की स्मृति सभा के बाद साथ बिताये गये दिनों में निकाले गये कुछ निष्कर्षों, लिये गये स्टेंडों में बदलाव को लेकर विजय शर्मा से तकरार का स्वाभाविक अवसर आया। जल्दी होने के बावजूद तकरार में उलझकर और देर हो जाने की भी परवाह नहीं रही। वक्त बदल गया है! अब दोस्ती में तकरार के लिए कोई जगह नहीं रह गई है। अब पूर्ण सहमति और नि:शर्त समर्पण ही संबंधों का आधार हो सकता है।

दूसरे दिन काम पर जाते समय दिमाग में बीस साल पुरानी बातों का कोलाहल था। लोकल ट्रेन की भीड़ में नित्य यात्रियों के दल के लोग रात में देखे फुटबॉल विश्वकप को लेकर अपनी पसंद की टीम के पक्ष में और दुश्मन टीम के विपक्ष में जी जान से लगे हुए थे। जुनून यह कि वे अपनी-अपनी पसंद की टीम के देश की भाषाओं के शब्दों के उच्चारण की नकल पर गढ़े शब्दों का प्रयोग कर रहे थे। ऐसे शब्दों में कोई निर्धारित अर्थ नहीं था

शायद। हाँ, अभिप्राय अवश्य था। अर्थ से रिक्त और अभिप्राय से पूर्ण शब्दों के ऐसे सफल प्रयोग से एक बात समझ में आई। बात यह कि कैसे और क्यों सामान समाप्त हो जाने पर डिब्बे में नया सामान भर दिया जाता है। डिब्बे के ऊपर की इबारत चाहे जो बताये गृहस्थ जानता है कि किस डिब्बे में चीनी है किस में नमक!

क्षण-क्षण रीतते हुए शब्दों में गृहस्थी के काम लायक अर्थ और अभिप्राय दोनों को ही सँजोने की चिंता करनी ही होगी। आजकल सामान का व्यवहार कर डिब्बों को फेक दिये जाने का ही चलन है। ऐसे लावारिस और अर्थ खो चुके शब्दों को अभिप्राय से ही बचाया जा सकता है। सभ्यता ने अभिप्राय से अर्थ की यात्रा की है। आज के कोलाहल से भरे समय में अर्थ से अभिप्राय तय करने की प्रवृत्ति से होनेवाले अनर्थ पर समर्थ लोगों में छाई चुप्पी का न तो अर्थ समझना मुश्किल है और न अभिप्राय समझना।

इस सामग्री के उपयोग के लिए लेखक की सहमति अपेक्षित है।
सादर, प्रफुल्ल कोलख्यान